ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 37-39

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

भक्तिकाव्य और कबीर की भक्ति

निमिशा सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, जे0 बी0 डिग्री कालेज, चौरी–चौरा–गोरखपुर (उ0प्र0), भारत

Received- 17.08.2020, Revised- 21.08.2020, Accepted - 23.08.2020 E-mail: - rahulrai28384@gmail.com

सारांश : ***हिन्दी–साहित्य के भक्तिकाल में कबीर का आर्विभाव एक क्रान्तिकारी घटना है। ये मूलतः भक्त हैं। इनकी भक्ति भारतीय परम्परा से अलग होते हुए भी इन्हें महान साधक के रुप में प्रतिष्ठित करती है। कबीर की भक्ति स्वानुभूति की आधार शिला पर स्थापित है। निर्गुणोपासक संत कवि कबीर भगवान के निर्गुण (सत्व, रज एवं तम, से परे) निराकार रुप के उपासक थे। भक्तिकाव्य में कबीर ने अवतारवाद का प्रबल विरोध किया तथा अपने ब्रह्म को घट–घट वासी एंव अर्न्तयामी बताया। कबीर की भक्ति किसी मत, सम्प्रदाय या सिद्धांत की अनुयायी नहीं थी। कबीर सामाजिक विसंगतियों को दूर करने वाले, यथार्थ को अनुभूति में उतारने वाले, तत्व–चिंतन करने वाले महान दार्शनिक तथा भगवान के चरणों में अपना सब–कुछ अर्पित कर देने वाले श्रेष्ठ भक्त–कवि थे।***

कुंजीभूत शब्द– भक्तिकाल, आर्विभाव, क्रान्तिकारी घटना, भारतीय परम्परा, साधक, प्रतिष्ठित, स्वानुभूति ।

हिन्दी–साहित्य का सम्पूर्ण पूर्वमध्यकाल 'भक्तिकाव्य' की अभिसंज्ञा में प्रसिद्ध है। विद्यापति, कबीर, जायसी, सूर, मीराबाई और रैदास की काव्यवाणी वस्तुतः भक्तिवाणी है। भजन और भक्तिभाव का प्रकाशन प्रायः सभी भक्तिकवियों का आग्रहशील स्वभाव था। ईश्वर अथवा भगवान अथवा दृश्य–अदृष्य पराशक्ति से साक्षात्कार में भक्त कवियों ने अपना सर्वस्व होम किया है। भौतिक व्यय कुछ नहीं, परन्तु आध्यात्मिक निधि अपार–अपरिमेय प्राप्त किया। आचार्यों ने प्रश्न खड़ा किसा है और मैं भी जिज्ञासा प्रश्न खड़ा करना चाहती हूँ कि हिन्दी की मध्यभूमि में यदि भक्तिकाव्य की रचना न हुई होती अथवा काव्यप्रणेता कवि भक्त–स्वभाव में उतरकर लोकमानस को कोई भरोसा–आश्वस्ति नहीं दे पाते तो मध्ययुगीन काव्य कैसा होता? अथवा कविगण कौन–सी शब्दरेखा उभारकर अपना अभ्युदय देखते? उत्तर एक ही उभरता है कि समाज–जनित परिस्थितियों का आकलन कर शाह–ए–वख्त का तानाशाही शासकीय मिजाज पढ़कर धर्म और अध्यात्म में आस्थाशील कविमानस वैसा ही करता जैसा कि प्रायः सभी भक्तिकवियों ने किया। राजा और सामन्त की अपेक्षा ईश्वर और मनुष्य को गौरव प्रदान करना भक्तों की नियति बनती गयी। यह एक मनोविज्ञान भी था। कारण कि सम्पूर्ण आर्यभूमि में पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक सर्वत्र एक–सी भक्तिवाणी उभरी। उत्तर–भारत में स्वामी रामानन्द के शिष्य कबीर ने इस भक्तियोग को प्रखर धार दी। "कबीर की मान्यता इस निराले अर्थ में भी है कि उन्होंने न तो अपने पालनहार माँ–बाप को छोड़ा और न ही अपनी पत्नी तथा अपने बच्चों को। सृष्टिचक्रका स्वागत करते हुए गृहस्थ जीवन का अभिनन्दन किया। गृहस्थ जीवन जीते हुए 'संतजीवन' और 'भगवद्भजन' कैसे सम्भव है? कोई कबीर से पूछे।"[1]

भक्ति काव्य की केन्द्रीय धुरी है 'भक्ति'। 'भक्ति' के इर्द–गिर्द सभी आनुषंगिक विषय परिक्रमा करते नजर आते हैं। कबीरदास एक भक्त कवि थे। भजन उनकी साधना का आधार था। भजन–भक्ति के सहारे उन्होंने अपनी सर्वकामना को परिपूर्ण किया। भक्ति के सभी स्वरुप कबीरदास द्वारा अपनाये गये। नारदी भक्ति से लेकर भावभक्ति तक। प्रेमा भक्ति से लेकर नामभक्ति भी। अजपाजप तो उनका निजी आग्रह ही था। कबीर राम को मानते थे मगर रहीम से परहेज नहीं था। कबीर की दृष्टि में राम–रहीम एक हैं। संज्ञा–भेद भर है। दोनों का विधान एक है। दोनों मोक्षदाता हैं। इतना जरूर है कि इस्लाम के एकेश्वरवाद से प्रभावित कबीर का मन बहुदेववाद में नहीं रम सका। दशरथ–पुत्र राम को मान्यता नहीं दे सका। कण–कण में व्याप्त राम के प्रति आस्थाशील बना। "राम नाम का मरम है आना" कहकर कबीर ने अपनी आस्था भूमि का स्वतन्त्र इजहार किया। निर्गुण निराकार राम को मान्यता दिया, धनुर्धारी अवध–नरेश को नहीं।

कबीर ने 'भक्ति' का नया पाठ तैयार किया है। परम्परित भक्ति से हटकर भक्ति की जमीन और चौड़ा करने का प्रयास किया है। भक्ति की सभी सीढ़ियों से गुजरने में उन्हें गुरेज नहीं था किन्तु भक्ति की अपनी सीढ़ी गढ़ने में उन्हें आत्मगौरव का बोध जरूर हुआ है। भक्ति का सब कुछ उन्हें अंगीकार था, किन्तु यदि कुछ अस्वीकार था, तो उसका दिखावटीपन, ढकोसलापन और रूढ़िपन। रूढ़ि

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

से उनका शत्रुभाव था, चाहे भक्ति हो चाहे कविता। समाज को देखने का नजरिया हो चाहे अध्यात्म में उतरने की निगाह। भक्ति को भेदभाव से नहीं, भक्तभाव से देखना उनकी पसन्द थी। कबीर एक महान भक्त, दार्शनिक और तत्त्व–चिंतक थे। अखण्ड आत्मविश्वासी, मस्त, अक्खड़ और फकीर थे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है– "कबीर की यह घर फूँक मस्ती, फक्कड़ाना लापरवाही और निर्मम अक्खड़ता उनके अखण्ड आत्मविश्वास का परिणाम थी।"[2] आचार्य द्विवेदी आगे कहते हैं– "ऐसे थे कबीर। सिर से पैर तक मस्तमौला। स्वभाव से फक्कड़। आदत से अक्खड़। भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय।"[3]

कबीर की साधना भक्ति की साधना है। कबीर का चरम लक्ष्य प्रेम अथवा भक्ति द्वारा भगवत् साक्षात्कार करना था। इस आसार संसार में कबीर ने भक्ति मात्र को ही सार माना है, तथा मनुष्य के परम श्रेय का साधन भी उसी को स्वीकार किया है। कबीरदास ने कर्मकाण्ड अथवा बाह्यचार की सर्वत्र निन्दा की है, किन्तु साधना के शेष तीन मार्ग ज्ञान, योग और भक्ति उन्हें स्वीकार्य हैं। कबीर भक्ति को सर्वोत्तम मानते हैं और ज्ञान तथा योग उमकी दृष्टि में वहीं तक उत्तम हैं, जहाँ तक वे भक्ति में सहायक हो सके। ज्ञान को भक्ति का अंग मानते हुए उन्होंने कहा है–

"जो जन जानि जपै जग जीवन,
तिनका ज्ञान न नासा।।"

इसी प्रकार कबीर ने योग के भी भक्ति के अंग–रूप में मान्यता प्रदान की है। भगवान से प्रेम करने के लिये मन को विषयों से अलग रखना अनिवार्य होता है, और इस कार्य में योग सबसे अधिक सहायक है। अतः योग भी भक्ति का एक महत्वपूर्ण अंग हुआ। यदि हृदय में कपट है और भगवान से सच्चा प्रेम नहीं है तो योग की नाना क्रियाएँ व्यर्थ हैं–

"हृदय कपट हरि सूँ नहिं साँचो।
कहा भयो जो अनहद नाच्यो।।"

ईश्वर में अनन्य अनुराग का ही दुसरा नाम भक्ति है। कबीरदास का बानियों में जगह–जगह इस बात के संकेत मिलते हैं कि भगवतप्रेम की शिक्षा उन्हें अपने गुरू से प्राप्त हुई थी और वे उसे पाकर धन्य हो गये थे। कबीर ने अपनी भक्ति को "भाव–भगति"कहा है और उसे भवसागर से मुक्ति पाने का सवोत्तम साधन बताया है–

"जब लगि भाव भगति नहिं करिहौ।
तब लगि भवसागर क्यों तरिहौ।।"

कबीर ने तुलसी की भाँति भक्ति की साधना के लिए चित्त की सरलता पर बल दिया है–

"जब मन छाँड़ै कुटिलाई, तब आइ मिले राम राई।

भाव–भक्ति की उपासना के लिए बाह्य विधानों की आवश्यकता नहीं होती। उपासना के बाह्य विधानों का कबीर ने जमकर विरोध किया है। तिलक लगना, कंठी बांधना, माला जपना आदि उनकी दृष्टि में निरर्थक है। भक्त के लिए आचरण की शुद्धता और उत्तम शील तथा भगवान के चरणों में पूर्ण आत्मसमर्पण अनिवार्य है। जब तक सभी प्रकार की इच्छाऐं समाप्त नहीं हो जाती, तब तक भक्त को भगवान का सामीप्य–लाभ नहीं हो सकता। निर्गुण ब्रह्म और भक्ति का सम्मिलन कबीर के दर्शन को विलक्षण बना देता है। उनकी भक्ति प्रेममयी है, सभी जातियों के लिए सुगम है। वाहयाडम्बर और कर्मकाण्ड से दूर है।

अहंकार और प्रेम दोनों हृदय में एक साथ नहीं रह सकते। जो प्रेम को अपने भीतर धारण करना चाहता है, उसे अहंकार का त्याग करना पड़ेगा। कबीर इस सत्य से भली–भाँति परिचित थे, इसलिए उन्होंने अहंकार का सर्वथा त्याग करके भगवान को अपने हृदय में बसा लिया था। आराध्य (राम) के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना का इससे सुन्दर उदाहरण और कहाँ मिल सकता है–

"मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझको अर्पन करता, क्या लागै है मेरा।।"

कबीर की भक्ति उच्चकोटि की सर्वथा निष्काम भक्ति है। वह भक्ति के फलस्वरूप न भक्ति माँगते है और न मुक्ति। तुलसी की भाँति कबीर भी स्वर्ग या अपवर्ग कुछ नहीं चाहते। कबीर को सिर्फ अपने आराध्य के प्रति अविचल अनुराग चाहिए–

"जब लगि भगति सकामना, तब लगि निर्फल सेव।
कहै कबीर वै मिलै, निहकामी निज देव।।"

नारदभक्ति–सूत्र में एकादश आसक्तियों को बहुत महत्व दिया गया है। कबीरदास की रचनाओं को देखने से विदित होता है कि वे नारद द्वारा प्रतिपादित भक्ति मार्ग (नारदी भगति) को अपना आदर्श मानते थे–

"भगति नारदी मगन सरीरा।
इहि विधि भवतिरि कहै कबीरा।।"

"कबीर की साधना में एक ही साथ नाथपंथ, वेदांत, वैष्णवमत, सूफीमत सभी का सारतत्त्व है। उनकी साधना पद्धति में सत्संगति, गुरु की महत्ता, नाम की महिमा, ईश्वर की सर्वव्यापकता, वाह्याडम्बर तथा मूर्तिपूजा का विरोध, गृहस्थ में रहकर संयमपूर्वक भक्ति की साधना, अजपा जाप पर बल आदि मिलता है।"[4] कबीर को अपने भगवान पर पूरा भरोसा है। इसलिए उन्होंने अपनी रक्षा का सम्पूर्ण भार उन्हीं पर डाल दिया था। ईश्वर के सम्मुख दैन्य–भाव का प्रदर्शन करने में कहीं–कहीं वे सभी भक्तों से

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

आगे निकल गये हैं।

समग्रतः यदि देखा जाये तो कबीर मिर्गुण–निराकार ब्रह्म के उपासक थे। कबीर ने वैष्णवों का बार –बार स्मरण किया है और भगवत्प्रेम अथवा भक्ति को अपना मार्ग बताया है। "वैष्णव भक्ति के प्रभाव के कारण ही कबीर के काव्य में शील, क्षमा, दया, उदारता आदि उदात्त गुणों का समावेश हुआ है।"[5]

वास्तव में कबीर का यथार्थ रूप भक्त का है। उनके आराध्य का न कोई रूप था, न कोई आकार। इसलिए उसं प्राप्त करने के लिए कबीर ने उपासना के बाह्य विधानों की कोई आवश्यकता नही समझी। उन्होंने अपनी साधना में प्रेम को प्रधानता दी तथा ज्ञान एंव योग को उसके अंग के रूप में स्वीकार किया। लौकिक जीवन में मनुष्य सदाचार का पालन करे और ईश्वर से उसे सच्चा अनुराग हो, कबीरदास इतना ही पर्यापत मानते हैं।

वास्तव में कबीर की भक्ति किसी एक सम्प्रदाय की नहीं है। वह एक ऐसी रागात्मिका वृत्ति के रूप में है, जो व्यक्ति या सम्प्रदाय की सीमाओं से ऊपर विश्व हृदय की अनुभूति के रूप में होता है, जिसका अनुभव सभी सीमाओं से मुक्त प्रत्येक हृदय में हो सकता है। "कबीर के व्यक्तित्व–निर्माण में भी तत्कालीन सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक शक्तियों का योग है।"[6]

सारांशतः कबीर की भक्ति जाति, धर्म, वर्ग, सम्प्रदाय और देश से ऊपर मनुष्य और मपनुष्यता की भक्ति थी। मनुष्यता अथवा मानवता का अभिरक्षण कबीर की भक्ति का प्रतिपाद्य था, न कि किसी ईश्वर या नये भगवान की खोज। अल्ला ताला की जन्नत में जाने और रहने के लिये भी कबीर रजामन्द नही थे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो0 रामदरश राय, 'सूरा कहा मरन तै डरपै' विषयक आलेख, पृष्ठ : 18, स्मारिका, 'मगहर महोत्सव', 2016, संत कबीरनगर।
2. डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी, 'कबीर' पृष्ठ–128, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, ISBN–978–81–267–1497–1
3. डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी, 'कबीर' पृष्ठ–134, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, ISBN–978–81–267–1497–1
4. डॉ0 कुसुम राय, 'हिन्दी–साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास' पृष्ठ:117, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी ISBN –978–81–7124–624–3
5. डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, 'कबीरदास' (आलोचनात्मक अध्ययन) पृष्ठः 41, प्रकाशन केन्द्र लखनऊ।
6. डॉ0 जयदेव सिंह, डॉ0 वासुदेव सिंह, 'कबीरवाणी पीयूष' पृष्ठः 21, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी।

*****